Bihar Board Class 12 Hindi Notes Chapter 13 गाँव का घर

कवि- ज्ञानेंद्रपति
लेखक- ज्ञानेंद्रपत
जन्म – 1 जनवरी 1950जन्म स्थान – पथरगामा, गोड्डा, झारखंड
निवास स्थान- वाराणसी, उत्तर प्रदेश
माता- सरला देवी
पिता- देवेंद्र प्रसाद चौबे

शिक्षा- प्रारंभिक शिक्षा गाँव के स्कूल मे ; बी०ए० और एम०ए० अंग्रेजी विषय में पटना विश्वविद्यालय से। फिर हिन्दी मे भी एम०ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर से

वृत्ति- बिहार लोक सेवा आयोग द्वारा चयनित होकर कारा अधिक्षक के रूप मे कार्य करते हुए कैदियों के लिए अनेक कल्याणकारी कार्यक्रम।

गाँव का घर कविता का भावार्थ
गाँव के घर के
अंत:पुर की वह चौखट
टिकुली साटने के लिए सहजन के पेड़ से छुडाई गई गोंद का गेह वह
वह सीमा

जिसके भीतर आने से पहले खाँस कर आना पडता था बुजुर्गों को
खड़ाऊँ खटकानी पड़ती थी खबरदार की
और प्राय: तो उसके उधर ही रूकना पड़ता था
एक अदृश्य पर्दे के पार से पुकारना पडता था
किसी को, बगैर नाम लिए
जिसकी तर्जनी की नोक धारण किए रहती थी, सारे काम सहज,
शंख के चिन्ह की तरह
गाँव के घर की
उस चौखट की बगल में
गेरू लिपी भीत पर
दूध-डूबे अँगूठे के छापे
उठौना दूध लाने वाले बूढ़े ग्वाला दादा के-
हमारे बचपन के भाल पर दुग्ध-तिलक-
महीने के अंत तक गिने जाते एक-एक कर

व्याख्या- प्रस्तुत पाठ ज्ञानेन्द्रपति द्वारा रचित कविता संग्रह **"संशयात्मा"** से ली गई है। इसमें प्राचीन गाँव की विशेषता को बताया गया है। कवि कहते हैं कि गाँव के घर में महिलाएँ अपनी टिकुली साटने के लिए सहजन के पेड़ की गोद का उपयोग करती थी। जिस घर में महिलाएँ रहती है, वहाँ बुजुर्ग लोग खाँस कर आते थे तथा

महिलाओं को अपनी खड़ाऊ की आवाज से घबरदार करते थे तथा चौखट से बाहर ही उनलोगों को रूकना पड़ता था। पर्दे के पीछे से ही महिलाओं को पुकारना पड़ता था। किसी को बगैर नाम लिए पुकारना पड़ता था। शंख की चिन्ह की तरह तर्जनी अंगुली के इशारे पर महिलाएँ घर की सारे काम बहुत आसानी से करनी पड़ती थी। गाँव की घर की चौखट के बगल की दीवार लाल रंग की खड़िया मिट्टी से लिपी हुई है। उस पर दूध में डूबे अँगूठे के छापे बनाए गए हैं। ये छाप उस ग्वाल दादा के हैं जो हमारे बचपन में प्रतिदिन दुध लाया करते थे। ये चिन्ह हमारे बचपन के मस्तक पर दुगध तिलक के होते थे और इन चिन्हों को महिने के अंत में गिने जाते थे। अर्थात कवि के कहने का अर्थ है कि दुध का हिसाब उन चिन्हों से किया जाता था।

गाँव का वह घर अपना गाँव खो चका है
पंचायती राज में जैसे खो गए पंच परमेश्वर
बिजली-बत्ती आ गई कब की, बनी रहने से अधिक गई रहनेवाली
अबके बिटौआ के दहेज मे टी०वी० भी
लालटेनें है अब भी, दिन-भर आलो मे कैलेंडरो से ढंकी-
रात उजाले से अधिक अँधेरा उगलतीं
अँधेरे मे छोड़ दिए जाने के भाव से भरतीं
जबकि चकाचौंध रोशनी मे मदमस्त आर्केस्ट्रा बज रहा है कहीं, बहुत दूर,
पट भिड़काए
कि आवाज भी नहीं आती यहाँ तक, न आवाज की रोशनी,
न रोशनी की आवाज
होरी-चैती बिरहा-आल्हा गुँगे
लोकगीतों की जन्मभूमि में भटकता है
एक शोकगीत अनगाया अनसुना
आकाश और अँधेरे को काटते
दस कोस दूर शहर से आने वाला सर्कस का प्रयास-बुलौआ
तो कब का मर चुका है
कि जैसे गिर गया हो गजदंतो को गँवाकर कोई हाथी
रेते गए उन दाँतो की जरा-सी धवल धूल पर

छीज रहे जंगल मे,
लीलने वाले मुँह खोले, शहर मे बुलाते हैं बस
अदालतों और अस्पतालों क फैले-फैले भी रुँधते-गँधाते अमित्र परिसर
कि जिन बुलौओं से
गाँव के घर की रीढ़ झुरझुराती है

व्याख्या- प्रस्तुत पाठ में कवि ने ग्रामीण सभ्यता को खो देने से दुखी होकर गाँव की संस्कृति की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हैं, वह प्राचीन गाँव की परंपरा आधुनिक गाँव से करते हैं। वे कहते हैं कि हमलोगों के जमाने का गाँव अब अपना गाँव खो चुका है। पंचायती राज में पंच परमेश्वर अब खो चुके हैं। अर्थात अब लोग पंचों की फैसलों को नहीं मान रहे हैं यानी पंचायती राज में पंचपरमेश्वर की परंपरा समाप्त हो गई है। गाँव में अब बिजली बत्ती आ गई है, लेकिन वह बहुत कम समय तक रहती है। अब बेटों के दहेज में टी.वी भी मिल रही है। घर में

https://www.evidyarthi.in/

लालटेनें भी है, लेकिन वह दिन-भर कहीं अलमीरा के कोनों में कलेंडरों से ढ़की रहती है। रात अब उजाले से अधिक अंधेरा रहती है। अधिकतर समय अंधेरा ही रहता है। जबकि घर से बहुत दूर चकाचौंध रोशनी में कहीं आर्केस्टा बजता है। उसका न आवाज आती है और न ही उसका रौशनी पहुँच पाता है।

अब गाँवों में पुराने लोकगीत होरी, चैती, बिरहा और आल्हा भी कहीं नहीं गाया जाता है। गाँव लोकगीतों की जन्मभूमि होती है, लेकिन यहाँ से लोकगीत खत्म हो गए हैं। लोकगीतों की जगह पर अनगाया अनसुना शोकगीत अँधेरे में कहीं बजता है।

दस कोस दूर से शहर से सर्कस का प्रकाश लोागों को सर्कस दिखाने के लिए आता था, जिस प्रकाश की परंपरा समाप्त हो गई। ऐसा हो गया है जैसे हाथी अपनी दाँतों को गँवाकर कहीं गीर गया है। उनके दाँतों को रेतने से निकलती जो सफेद धुल (दंत के अवशेष) पूरे जंगल में नष्ट हो रहें हैं। जंगल को नष्ट करने वाले लोग शहरों की ओर बुला रहे हैं। शहर सिर्फ शोषण करने के लिए बुलाते हैं

अदालतों और अस्पतालों का वातावरण भी बिल्कुल बदल चुका है, जिनके बारे में में सोचकर गाँव की घरों की परंपरा झुरझुरा रही है।

इस कविता में कवि ने गाँवों की परंपरा के बारे में बताए हैं कि कैसे शहर हमारी परंपरा को नष्ट कर रहे हैं।